International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 803-804

श्रीमद्भगवद्गीता में स्थितप्रज्ञ की अवधारणा

डॉ0 भानु प्रकाश त्रिपाठी

अतिथि प्रवक्ता संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

महर्षि वेदव्यास दृष्ट, 700 श्लोकों में निबद्ध श्रीमद्भगवद्गीता विश्व की अत्यन्त ही पवित्र और लोकप्रिय रचना है। गीता समस्त उपनिषदों का सार है। उपनिषद् गहन, विस्तृत और विविधतापूर्ण हैं। जिससे साधारण मनुष्य के लिए उनका अध्ययन दुरूह है। गीता में उपनिषद् के तथ्यों को सरल ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसलिए कहा गया है कि समस्त उपनिषदें गायें (Cow) हैं, कृष्ण उसके दुहने वाले हैं, अर्जुन बछड़ा है और विद्वान् गीतारूपी महान् अमृत का पान करने वाले हैं–

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।[1]

भारतीय दर्शन की प्रस्थानत्रयी (ब्रह्मसूत्र, उपनिषद्, गीता) में परिगणित श्रीमद्भगवद्गीता में केवल धार्मिक विचार ही नहीं हैं बल्कि नैतिक नियम, तत्त्वविचार, ब्रह्मविद्या, ईश्वर और आत्मा के विषय में विविध सिद्धान्त, सृष्टि विषयक सिद्धान्त और योगशास्त्र आदि भी निहित हैं। इसीलिए महर्षि वेदव्यास ने कहा है कि–

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।[2]

गीता भली प्रकार मनन करके हृदय में धारण करने योग्य है, जो पद्मनाभ भगवान् के श्रीमुख से निःसृत वाणी है फिर अन्य शास्त्रों के संग्रह की क्या आवश्यकता ?

सत्–चिद्–आनन्द स्वरूप परब्रह्म परमेश्वर जब भी अपने अनन्य भक्तों के अज्ञान को दूर कर उनके कल्याण की बात सोचते हैं, तो उस भक्त में रहने वाले विचारों को उसी के द्वारा शास्त्रों के माध्यम से प्रकटीकरण करवाकर उन मोहजनित विकारों से आत्यन्तिक मुक्ति दिला देते हैं। अर्जुन एक अक्षौहिणी सेना को त्यागकर भगवान् श्रीकृष्ण का ही वरण करता है। उसी समय से भगवान् के हृदय में अर्जुन के कल्याण का भाव जागृत हो जाता है। कारण कि जब साधक सांसारिक वैभव का परित्याग करके केवल भगवान् को ही स्वीकार कर लेता है , तब उसके कल्याण का दायित्व भगवान् पर आ जाता है।

इसी प्रतिक्रिया स्वरूप भगवान् के इस प्रकार कहने पर कि ''आत्मतत्त्व को विषय करने वाली– स्वयं अचल तेरी एकरस बुद्धि जब आसक्ति रहित कर्मानुष्ठान के द्वारा निर्मल किये गये मन में निश्चल भाव से स्थिर हो जायेगी और तब तू आत्मसाक्षात्कार को प्राप्त होगा।'' अर्जुन के मन में शंका उत्पन्न होती है और वह उस कर्मानुष्ठान के द्वारा प्राप्त होने वाली योग की साधनरूपी स्थितप्रज्ञता के विषय में भगवान् श्रीकृष्ण से पूँछता है–

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्।।[3]

अर्थात् स्थितप्रज्ञ पुरुष के क्या लक्षण होते हैं? स्थितप्रज्ञ पुरुष कैसे भाषण करता है? किस तरह आचरण करता है और कैसे बैठता है? अर्जुन द्वारा पूँछे गये इन प्रश्नों में से प्रथम समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हुए भगवान् कहते हैं–

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।[4]

कामनाएं न तो मन में होती हैं और न स्वयं में, किन्तु मन–बुद्धि के तादात्म्य होने पर व्यक्ति मनोगत भावों को अपने में ही मान लेता है। अतः प्रकृष्ट रूप से व्यक्ति जब सदा–सर्वदा के लिए इन कामनाओं का परित्याग कर देता है, तो उसमें कामना का पुनः कोई अंश शेष नहीं रह जाता। इस प्रकार निष्काम भावना से युक्त वह स्वरूपभूत संतोष में प्रतिष्ठित हो जाता है। अतः जिस काल में वह मनोजनित सभी कामनाओं का पूर्ण परित्याग करके अपने से अपने में ही सन्तुष्ट हो जाता है उस समय वह स्थितप्रज्ञ कहलाने लगता है। अब स्थितप्रज्ञ कैसे बोलता है? इसके उत्तर में भगवान् कहते हैं–

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितिधीर्मुनिरुच्यते।।[5]

दैहिक, दैविक तथा भौतिक दुःखों की प्राप्ति होने पर अर्थात् कर्तव्य–कर्म करते समय कर्म करने में बाधा उपस्थित हो जाना, निन्दा–अपमान होना, कर्मफल प्रतिकूल प्राप्त होना आदि विभिन्न प्रतिकूलताएं आने पर भी उस स्थिति विशेष को प्राप्त पुरुष के मन में उद्वेग नहीं पैदा होता अर्थात् कर्मों का अनुष्ठान करते हुए भी वह उनमें अनासक्त रहता है। इसके विपरीत सुखों के प्राप्त हो जाने पर यह अनुकूलता की स्थिति सदैव बनी रहे, यह भावना भी उसके मस्तिष्क में नहीं रहती ऐसा व्यक्ति, राग, भय क्रोध से मुक्त स्थित प्रज्ञ कहलाता है।

इसके पश्चात् भगवान सुख–दुःख रूपी अनुकूलता एवं प्रतिकूलता को प्राप्त होने पर भी समत्व–भाव की स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।[6]

जो पुरुष सब जगह स्नेहरहित अर्थात् अपने कहलाने वाले इन्द्रियां, मन, बुद्धि, स्त्री, घर, धनादि सभी में निरासक्त रहता है। अर्थात् अमुक् वस्तु पाकर मैं बड़ा बन गया। धन नष्ट हो जाने पर मैं नष्ट हो गया ऐसा सोचने वाला अभिस्नेह कहलाता है। लेकिन विपरीततः स्थित बुद्धि व्यक्ति किसी भी सांसारिक व्यक्ति या वस्त्वादि के प्रति अभिस्नेह युक्त नहीं होता। ऐसा स्थिति बुद्धि व्यक्ति सुख–दुःख रूपी अनुकूलता एवं प्रतिकूलता को प्राप्त होने पर भी प्रारब्ध

समझकर वह न तो अनुकूलता से प्रेम करता है और न ही प्रतिकूलता से द्वेष। इस प्रकार रागद्वेषरहित हो वह स्थित–प्रज्ञ हो जाता है। अब भगवान् स्थित–प्रज्ञ कैसे बैठता है या उसकी स्थिति क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं–

यदा संहरते चायं कूर्मोऽदानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।[7]

यहाँ कछुवा दृष्टान्त देने का भगवान् का विशेष प्रयोजन है। जैसे कछुवा चलता है तो उसके छः अंग–चार पैर एक पूंछ और एक मस्तक दीखते हैं, लेकिन जब वह अपने इन अंगों को समेट लेता है तो उसकी केवल पृष्ठि दिखाई देती है। ठीक उसी प्रकार स्थित–प्रज्ञ पुरुष भी अपनी पांच ज्ञानेन्द्रियों एवं मन को विषयों से हटाकर इन्द्रियों का उपसंहार कर लेता है। किन्तु केवल इन्द्रियों का विषयों से निग्रह ही स्थित–प्रज्ञता नहीं है। इस पर भगवान् कहते हैं–

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।।[8]

अर्थात् इन्द्रियों को विषयों से हटा लेने पर विषय तो निवृत्त हो जाते हैं किन्तु साधक के मन में विषयों के प्रति जो रस बुद्धि है वह सहज ही निवृत्त नहीं होती। अर्थात् तीव्र वैराग्य के बिना ही जो साधना में रत है उनकी रसबुद्धि कभी निवृत्त नहीं होती, किन्तु परमात्मा का अनुभव हो जाने पर वह सहज ही निवृत्त हो जाती है। यहाँ पर स्थित–प्रज्ञ ही हो जाता है यह नियम नहीं है। बल्कि स्थित–प्रज्ञ होने पर रसबुद्धि नहीं रहती यह नियम है। अब स्थित–प्रज्ञ पुरुष कैसे चलता है ? इसका समाधान प्रस्तुत करते हुए कहते हैं–

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।।[9]

विषयों के प्रति आसक्ति भावना से युक्त होकर उनका सेवन करने पर प्रेय की प्राप्ति होती है। किन्तु आसक्ति रहित होकर विषयों को सेवन करने से यह कर्मबन्धन में न बंधकर उत्थान की ओर अग्रसर होता है। अतः जिसका मन अपने वश में है जिसकी इन्द्रियां राग–द्वेष रहित होकर विषयों का सेवन करती हैं वह परम् शांति को प्राप्त हो जाता है। अब भगवान परम् शान्त स्थिति का विवेचन करते हुए कहते हैं–

''आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामां यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।।[10]

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार सम्पूर्ण नदियों के प्रवेश से समुद्र में किसी भी प्रकार का विकार पैदा नहीं होता, ठीक उसी प्रकार इन्द्रियों के द्वारा शब्दादि विषयों का सेवन किये जाने पर भी जो पुरूष आत्मसाक्षात्कार को प्राप्त होने के कारण विकार को प्राप्त नहीं होता वही शान्ति को प्राप्त होता है। जो शब्दादि विषयों के द्वारा विकृत हो जाता है भोगों की कामना वाला ऐसा व्यक्ति कभी नहीं, और अब स्थित–प्रज्ञ पुरुष कैसे चलता है ? इस प्रश्न का समाधान प्रस्तुत करके भगवान् उत्तरों का उपसंहार करते हैं–

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति।।[11]

अर्थात् जब व्यक्ति में अप्राप्त वस्तुओं की प्राप्ति की कामना नहीं रह जाती एवं अहंता का पूर्णरूपेण परित्याग करके ममत्व भावना का परित्याग कर देता है तो वह परम् शान्ति को प्राप्त कर लेता है यही बात 55वें श्लोक में ''व्रजहाति यदा कामाः'' कहकर कही गयी और अन्ततः भगवान् कामना स्पृहा एवं ममता, अहंता से रहित परम् पद को प्राप्त हुए पुरुष की स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं–

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।।[12]

भगवान् कर्मानुष्ठान की चरम परिणति बताते हैं कि हे पार्थ! यह ब्राह्मी स्थिति है और इस स्थिति को प्राप्त व्यक्ति का फिर कभी इन सांसारिक पदार्थों के प्रति लगाव नहीं होता। अतः व्यक्तित्त्व के स्खलन से वह पुनः मोहित नहीं होता। यह नित्य योग की परम् स्थिति है। इसमें एक ही तत्त्व रहता है।

इस प्रकार सर्वथा सभी मनोगत विकारों, मनोजनित कामना, ममता, स्पृहा, अहंता एवं इच्छा का परित्याग करके, जड़ता से अपना सम्बन्ध विच्छेद करके, इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर नीरस भाव से उनका भोग करते हुए हे अर्जुन! तू इस ऐसी ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त हो जायेगा, जहाँ से पुनः तेरा पतन नहीं होगा और तेरी प्रज्ञा प्रतिष्ठित हो जायेगी।

सन्दर्भ–सूची

1. अथ गीता माहात्म्य श्लोक–6
2. महाभारत, भीष्मपर्व अध्याय 43.1
3. श्रीमद्भगवद्गीता 2.54
4. श्रीमद्भगवद्गीता 2.55
5. श्रीमद्भगवद्गीता 2.56
6. श्रीमद्भगवद्गीता 2.57
7. श्रीमद्भगवद्गीता 2.58
8. श्रीमद्भगवद्गीता 2.59
9. श्रीमद्भगवद्गीता 2.64
10. श्रीमद्भगवद्गीता 2.70
11. श्रीमद्भगवद्गीता 2.71
12. श्रीमद्भगवद्गीता 2.72